IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आलोचकों की दृष्टि में कामायनी के स्त्री पात्र: एक समीक्षा

Ritu Kumari

'कामायनी' जयशंकर प्रसाद कृत ऐसा महाकाव्य है जो सदैव मानव जीवन के लिए एक प्रेरणा बन कर रहेगा। जिस प्रकार रामायण और महाभारत संस्कृत भाषा के ऐसे महान ग्रन्थ हैं, जिन पर भारत की बहुत बड़ी साहित्यिक सम्पदा आश्रित है, उसी प्रकार कामायनी छायावाद की सर्वोत्कृष्ट रचना है, जिसे जीवन के हर दशक में, हर पड़ाव में नए सिरे से पढ़ने पर जीवन के नये दर्शन का पता चला है।

"कामायनी भारत की आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधि महाकाव्य है।"1 इसका निर्माण छायावाद की प्रौढ़ वेला में हुआ है और यह छायावाद के प्रवर्तक महाकवि जयशंकर प्रसाद की गहन अनुभूति एवं उन्नत अभिव्यक्ति की सरकार प्रतिमा है। कामायनी दर्शनात्मक महाकाव्य और उसकी समस्त दृष्टि प्रतीकात्मक है। जीवनोद्भव और उसके विकास संकल्पना कामायनी के मूल में है। उसका विषय ही दर्शनोन्मुखी है। प्रसाद जीवन दर्शन के स्वीकार के पक्षधर महाकवि हैं। कामायनी की कथा मार्मिक तथा हृदय-ग्राह्य है। उसकी संवेदना की सघन पीड़ा मर्त्य हृदय को मथ डालती है। कामायनीकार मानव की व्यथा से जुड़ा है। उसके साथ उसके जीवन मूल्य भी चलते हैं। हर समय दुख-सुख, काम, कर्म, इच्छा, चिंता सभी में वे जीवन मूल्यों को साथ लेकर चलते हैं। कवि मानव की अंतश्चेतना पर होने वाले व्यापक घात प्रतिघात को ध्यान में रखकर जीवन दर्शन की खोज करता है।

"कामायनी के विधान की यह मौलिक विशेषता है कि यहां पूरी रचना का अर्थ एक नहीं है, पर रीतिकालीन श्लिष्ट काव्य की तरह दो अलग-अलग अर्थ भी नहीं है, वरन एक ही अर्थ के दो स्तर अपने तनाव और संश्लेष से एक वृहत्तर अर्थ की सृष्टि करते हैं। रचना के क्षेत्र में यह अर्थ का अद्वैत है जो छायावादी काव्य, खास तौर से कामायनी की विशिष्ट-रचना प्रक्रिया और उपलब्धि है। रचना में अर्थ का यह अद्वैत भाव-संभोग और अध्यात्म जाती सृजन-प्रक्रियाओं के समानांतर देखा जा सकता है।"2

कामायनी की कथा का सार, दर्शन, आनंद निम्नलिखित 'प्रेमशंकर' जी के एक वक्तव्य से मालूम हो जाता है - "कामायनी के नवीन जीवनदर्शन की प्रतिष्ठा के कारण प्राचीन कथा का अल्पांश ही प्रसाद ने ग्रहण किया। कथा महत्वपूर्ण होते हुए भी वृहत् प्रकार की नहीं है। जलप्लावन, मनु-श्रद्धा का मिलन, बिछोह, इड़ा का प्रवेश, जल संघर्ष, पुनर्मिलन आदि की सीमित घटनाओं में कामायनी का निर्माण हुआ है। कथा में उत्कर्ष, अपकर्ष लाने की दृष्टि से इड़ा मनु को बाद में मिलती है, अन्यथा शतपथ ब्राह्मण में वह पूर्व ही आ जाती है। संघर्ष को अधिक तीव्र करने की दृष्टि से मनु दो बार श्रद्धा को छोड़ते हैं। कवि ने इड़ा-मानव के संबंध को अधिक स्पष्ट नहीं किया और उसे अपरिभाषित ही छोड़ दिया। कथा के माध्यम से प्रसाद जी ने जीवन दर्शन की स्थापना की है। श्रद्धा का संदेश, मनु का आंतरिक द्वंद्व आदि के द्वारा उन्होंने जीवन शक्ति का प्रतिपादन किया। इसका आधार भारतीय दर्शन है। समरसता और आनंद की चर्चा में शासन के शैवदर्शन के सिद्धांत स्पष्ट दिखाई देते हैं।"3

कामायनी में जहां कहीं दार्शनिक विवेचन है, वहां मानव जीवन तथा इतिहास की पीठीका वर्तमान में है, जिससे उसका दर्शन व्यवहारिक एवं मनोवैज्ञानिक हुआ है। वस्तुतः प्रसाद जी ने दर्शन में जीवन का अवलोकन किया है और जीवन में दर्शन को। डॉ नगेंद्र के अनुसार "कामायनी का वस्तु विकास बहिर्मुखी न होकर अंतर्मुखी है। वह मानव चेतना के विकास की कथा है जो मनु के जीवन विकास के माध्यम से कही गई है।"4 वास्तव में प्रसाद जी ने प्रत्येक पात्रों पर अपने रहस्यवादी दृष्टिकोण का झीना पर्दा डाल दिया है। वह स्वयं लिखते हैं कि "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का संबंध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।"5 परंतु नामवर सिंह के अनुसार "कामायनी में रूपक का निर्वाह ठीक से नहीं हो सका है।"6 शायद प्रसाद भी रूपक निर्वाह की कठिनाइयों को समझते थे, इसलिए उन्होंने उपरोक्त पंक्तियों में रूपक का दावा नहीं किया। नामवर सिंह आगे लिखते हैं कि "इस कठिनाई के मूल में केवल कवि के काव्य-कौशल की असमर्थता नहीं है। दरअसल यह अप्रस्तुत के विरुद्ध प्रस्तुत का, परोक्ष के विरुद्ध प्रत्यक्ष का, आदर्श के विरुद्ध यथार्थ का और शाश्वत के विरुद्ध सामयिक का जोर है।"7

जिस प्रकार कामायनी जीवन को विशाल कैनवस पर विश्लेषित कर रही है। उसी प्रकार दशकों से चली आ रही कामायनी की आलोचना, उसकी ज़िंदादिली और महानता का प्रतिरूप है, जो आज भी वर्त्तमान को चुनौती दे रही है। हर गतिशील वस्तु विकास की प्रक्रिया से गुजरती है और ऐसी स्थिति में यदि कामायनी आचार्य शुक्ल, आचार्य वाजपेयी और डॉ नगेंद्र से होकर अनेकानेक शोधप्रबंधों से गुजरती हुई मुक्तिबोध, डॉ0 मदान, नामवर सिंह,रमेश कुंतल मेघ और रामस्वरूप चतुर्वेदी तक को ललकारती रही है तो यह उसकी गत्यात्मकता का एक प्रमाण है। अपनी लोकप्रियता, आलोचना तथा प्रशंसा को समभाव से स्वीकार कर 'कामायनी' आज भी अपने स्थान पर अटल है।

यही कारण है कि कामायनी को जितनी बार पढ़ा जाए नए संदर्भों में इसके नए अर्थ खुलते हैं। जीवन के विविध आयामों के प्रति विचार दृष्टि साफ होती है। शायद इसीलिए 'कामायनी एक पुनर्विचार' में मुक्तिबोध ने लिखा है कि प्रसाद मनु, इड़ा, श्रद्धा को अपनी दार्शनिक मनोवृत्तियों के अनुकूल चाहे जैसा प्रतीकत्व प्रदान करें, कामायनी की व्याख्या वर्णित मानव चरित्रों के आधार पर ही की जा सकती है।

भाषा, प्रतीक और बिम्ब के लिहाज से कामायनी जितनी वैभवशाली है, बोध की दृष्टि से उतनी ही महीन। कामायनी अपने तमाम साहित्यिक, कला, भाव और प्रतीक-बिम्ब पक्ष के अलावा एक और खास तथ्य के कारण अहम् स्थान रखती है। वह तथ्य है, सृष्टि में स्त्री की भूमिका। यूं तो पुरूष और स्त्री मानवीय विशेषताओं और कमजोरियों के कारण समान है, मगर सृष्टि निर्माण में समान या कुछ अधिक भूमिका के बावजूद स्त्री को कमतर स्थान दिया गया है। इन स्थिति में समूचा प्रसाद साहित्य स्त्री की विशिष्टता को गाढ़े रूप में रेखांकित करता प्रतीत होता है। खासकर कर कामायनी में वे स्त्री के इस योगदान को प्रस्तुत करते हैं।अतः, वर्तमान परिवेश में, आलोचकों की दृष्टि में कामायनी के स्त्री पात्रों का आंकलन करने से पूर्व हमें संक्षेप में प्रसाद जी का अपने पात्रों के प्रति दृष्टिकोण को भी देख लेना चाहिए जो इस महाकाव्य में इर्द-गिर्द उठता-गिरता रहा है।

जयशंकर प्रसाद ने कामायनी की बुनावट श्रद्धा, मनु और इड़ा को केंद्र में रख कर किया। हालाँकि जो ममत्व उन्होंने मनु और श्रद्धा को दिया, वो इड़ा को प्राप्त नहीं हो सका। स्वयं उनके शब्दों में " यदि श्रद्धा और मनु अर्थात मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है तो भी बड़ा ही भावमय और शलाघ है।"8 वहीं इड़ा के परिप्रेक्ष्य में उनके ये कथन - " यह इड़ा का बुद्धिवाद श्रद्धा और मनु के बीच व्यवधान बनाने में सहायक होता है। फिर बुद्धिवाद के विकास में, अधिक सुख की खोज में, दुख मिलना स्वाभाविक है।"9 यहां श्रद्धा की अवतारणा हेतुमूलक है, प्रसाद जी ने मनु की मुक्ति के लिए ही मानो उसको उठाया हो। परंतु साथ ही प्रसाद ने नारी को आदर्शस्वरूपा मानकर सर्वोच्च स्थान देने की भी कोशिश की है -

"नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजत-नग पगतल में।

पीयूष-स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में।"10

कामायनी में श्रद्धा मनु की प्रेरणा है। वह मनु को जीवन के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाती है। मनु जितना कमजोर, श्रद्धा उतनी की सशक्त। मनु में जितना विचलन, श्रद्धा में उतना ही स्थायित्व। वह श्रद्धा ही है जो मनु के मन की चंचलता के आगे अडिग खड़ी रहती है। नारी के प्रति प्रसाद का दृष्टिकोण कामायनी की श्रद्धा में ही दिखाई देता है। उन्होंने श्रद्धा का चरित्र चित्रण ऐसी नारी के रूप में किया है जो पुरूष की अनुगामिनी नहीं, सहगामिनी बल्कि सहगामिनी से बढ़ कर नर की जीवन यात्रा की सारथी है।

'कामायनी' के इड़ा सर्ग में प्रसाद ने मनु को लिखा है-

"तुम भूल गये पुरुषत्व-मोह में, कुछ सत्ता है नारी की।

समरसता है संबंध बनी, अधिकार और अधिकारी की।"

यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है कि कामायनी के दोनों स्त्री पात्र श्रद्धा और इड़ा पर पूर्णरूपेण आलोचनात्मक दृष्टिगोचर करने के लिए उनके बीच की कड़ी मनु को भी केंद्र में रखना जरूरी हो जाता है।

जिस काल में प्रसाद जी ने इन स्त्री पात्रों की रचना की थी, तब की तुलना में आज स्त्रियों के जीवन में कई उतार-चढ़ाव और बदलाव आये हैं। ऐसे में इन पात्रों को उस दौर से तुलना करते हुए वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में देखना एक रोचक यात्रा से गुज़रने जैसा है, जिसकी शुरुआत उस समय के सबसे प्रतिष्ठित आलोचक आचार्य शुक्ल जी की आलोचना से होगी। आचार्य शुक्ल की दृष्टि में यह काव्य बड़ी विषद कल्पनाओं और मार्मिक उक्तियों से पूर्ण है तथा इड़ा की तुलना में श्रद्धा का पक्ष लेने से इनकार करते हैं। उनके अनुसार "कवि ने श्रद्धा को मृदुता, प्रेम और करुणा का प्रवर्तन करने वाली और सच्चे आनंद तक पहुंचाने वाली चित्रित किया है। इड़ा या बुद्धि अनेक प्रकार के वर्गीकरण और व्यवस्थाओं में प्रवृत्त करती हुई कर्मों में उलझाने वाली चित्रित की गई है।"11 संक्षेप में कहानी का सारांश समझाते हुए वे आगे लिखते हैं कि " जिस समन्वय का पक्ष कवि ने अंत में सामने रखा है उसका निर्वाह रहस्यवाद की प्रकृति के कारण काव्य के भीतर नहीं होने पाया है। पहले कवि ने कर्म को बुद्धि या ज्ञान की प्रवृत्ति के रूप में दिखाया, फिर अंत में कर्म और ज्ञान के बिंदुओं को अलग अलग रखा।"12 आगे उन्होंने 'संवेदना' पर ध्यान केंद्रित करते हुए कामायनी का यह उदाहरण प्रस्तुत किया-

"हम संवेदन-शील हो चले, यही मिला सुख।

कष्ट समझने लगे बनाकर निज कृत्रिम दुख।"13

इसे व्याख्यायित करते हुए वे लिखते हैं कि "असंतोष से उत्पन्न आवास्तविक कष्टकल्पना के दु:खानुभव के अर्थ में ही इस शब्द को जकड़ रखना भी व्यर्थ प्रयास कहा जाएगा। श्रद्धा जिस करुणा, दया आदि की प्रवर्तिका कही गई है वह दूसरों की पीड़ा का संवेदन ही तो है। दूसरों के दु:ख का अपना दु:ख हो जाना ही तो करुणा है। पर दु:खानुभव अपनी ही सत्ता का प्रसार तो सूचित करता है। चाहे जिस अर्थ में लें, संवेदन का तिरस्कार कोई अर्थ नहीं रखता।"14 यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है कि श्रद्धा जिसे संवेदना, करुणा और दया आदि की प्रवर्तिका दिखाया गया है, वही श्रद्धा सारस्वत नगर के रणक्षेत्र में जब पहुंचती है तो सभी ओर घायल और मृतक को देखते हुए भी सिर्फ मनु की ओर करुणार्त्त होकर बाकी सारी जनता की पीड़ा को दरकिनार कर देती हैं। यहाँ तक कि जब मनु श्रद्धा को छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं तब भी वो इड़ा के साथ संवेदना ज़ाहिर करने के बजाय उनकी आलोचना करती नज़र आती है "सिर चढ़ी रही पाया न हृदय"15 और उसे लंबे उपदेश देती है, वे मनु का इड़ा के प्रति दुष्कर्म को पूर्णतः नज़रंदाज़ कर देती हैं। यहाँ शुक्लजी की ये पंक्तियां बिल्कुल सटीक जान पड़ती हैं - "क्या श्रद्धा के संबंध में नहीं कहा जा सकता था कि "रस पगी रही पाई ना बुद्धि"? जब दोनों अलग-अलग सत्ताएँ करके रखी गई है तब एक को दूसरी से शून्य कहना और दूसरी को पहले से शून्य न कहना, गड़बड़ में डालता है। पर श्रद्धा में किसी प्रकार की कमी की भावना कवि की ऐकांतिक मधुर भावना के अनुकूल न थी।"16 शुक्ल जी अपने पक्ष को आगे और स्पष्ट करते हैं - " कर्म को कवि ने या तो काम्य यज्ञों के बीच दिखाया है अथवा उद्योग-धंधों या शासन विधानों के बीच। श्रद्धा के मंगलमय योग से किस प्रकार कर्म धर्म का रूप धारण करता है, यह भावना कवि से दूर ही रही है। इस भव्य और विशाल भावना के भीतर उग्र और प्रचंड भाव भी लोक के मंगलविधान के अंग हो जाते हैं। श्रद्धा और धर्म का संबंध अत्यंत प्राचीन काल से प्रतिष्ठित है। महाभारत में श्रद्धा धर्म की पत्नी कही गई है। हृदय के आधे पक्ष को अलग रखने से केवल कोमल भावों की शीतल छाया के भीतर आनंद का स्वप्न देखा जा सकता है; व्यक्त जगत के बीच का उसका आविर्भाव और अवस्थान नहीं दिखाया जा सकता।"17 वास्तव में शुक्ल जी ज्ञान प्रसार और भाव प्रसार को एक दूसरे से पृथक नहीं मानते। उनके अनुसार हृदय और बुद्धि में फर्क करना सही नहीं है। सिर्फ किसी एक पक्ष को अधिक महत्व देना मतलब जीवन को एकांगी दृष्टिकोण से देखना, सर्वांगी नहीं।

आचार्य शुक्ल की आलोचना के बाद कामायनी को एक अंतराल का लाभ मिला और उस पर होने वाले बाकि आलोचना कामायनी से इतना अभिभूत थे कि उनकी बात प्रभाववादी आलोचना का संस्करण बन कर रह गयीं। अतः आचार्य शुक्ल को पहली गंभीर चुनौती उनके शिष्य आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने दी। उन्होंने कामायनी को छायावादी युग की स्थापना के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा, इसलिए उन्होंने उसे केवल महत् काव्य ही नहीं प्रमाणित किया वरन् एक उत्कृष्ट महाकाव्य घोषित करने की पुरज़ोर कोशिश की। कामायनी की व्याख्या में आचार्य वाजपेयी सर्वप्रथम उसके मानवीय जीवन दर्शन का महत्व प्रतिपादित करते हैं, क्योंकि वे उसमें साहित्य प्रगतिशीलता देखते हैं। वे यह भी मानते हैं कि यदि प्रसाद जी में रहस्यवाद है भी, तो वह और उनकी आध्यात्मिक अनुभूति मानव-जीवन व्यापार की नींव पर खड़ी है। मानवीयता की छानबीन करते हुए आचार्य वाजपेयी ने कामायनी को जीवन के गहरे बहुमुखी घात-प्रतिघातों और विस्तृत जीवनदिशाओं में पद-पद पर आने वाले उद्योगों को चित्रित करने वाला, उन्हें संभालने वाला और कला में उन सब को सजीव करने वाला काव्य माना है। उन्होंने प्रसाद जी की शैली, वस्तु संगठन तथा निर्माण आदि की उत्कृष्टता प्रमाणित की है।

आचार्य वाजपेयी ने कामायनी के स्त्री पात्रों को कई स्तर पर परखने की कोशिश की है। एक तरफ उन्होंने इसे बौद्ध साहित्य के मनोविज्ञान से जोड़ते हुए कहा है की "बौद्ध कालीन चरित्रों के अध्ययन से प्रसाद जी ने एक मुख्य वस्तु निकाली नारी शक्ति का सम्मान।"18 दूसरी ओर उन्होंने यह भी कहा कि "नारी-शक्ति का सम्मान आदर्शवाद की कोई उड़ान नहीं है, उस शक्ति के वास्तविक स्वरूप और रहस्य के संधान की चेष्टा है जिसे भारतवासियों को खोये बहुत दिन हो गए।"19

उन्होंने कामायनी के स्त्री पात्र को समझने के लिए एक नयी दृष्टिकोण देनी चाही, जहाँ वो श्रद्धा के लिए लिखते हैं 'प्रसाद ने नारी को विद्या में, बुद्धि में, चरित्र में सब प्रकार पुरूष से श्रेष्ठ सिद्ध किया साथ ही परस्पर प्रतियोगिता का भाव भी बचाए रखा।' वहीं दूसरी ओर वो श्रद्धा के लज्जा को चित्रित करते हुए लिखते हैं - "लज्जा ही नारी को संयम, त्याग और समर्पण की शिक्षा देती है। नारी अपना भविष्य समझने में असमर्थ है। वह संकल्प-विकल्प में पड़ी है। वह अपने अस्तित्व के वास्तविक उद्देश्य को समझना चाहती है, पर वह असमर्थ है।"20 इसी दोहरी मनोवृति के कारण के साथ प्रसादजी ने कामायनी को एकदम आधुनिक नायिका नहीं बना दिया। इड़ा को सीधे तौर पे बुद्धि से जोड़ते हुए उन्होंने लिखा है कि "स्वयं बुद्धि के द्वारा अपने काव्य का उपादान जिसने इतना बलिष्ठ बनाया वह यदि बुद्धि की निंदा करें तो यह उसकी अकृतज्ञता भी कही जा सकती है। किंतु मेरे विचार से बात यह नहीं है। यह 'कामायनी' काव्य प्रसाद जी ने मनु या मनस्तत्व की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए बनाया है। मनु जितनी बुद्धि का भार सहज रूप से वहन कर सकता है, अथवा जितनी अतिरिक्त बुद्धि वह संभाल सकता है उतनी ही उसे धारण करनी है। इतनी बुद्धि तो श्रद्धा में है ही। किंतु मनु तो उतने से संतुष्ट नहीं हुआ और बुद्धि का अधिपति बनने का दम भरने लगा। स्पष्ट ही उसका माथा फिर गया था अन्यथा वह ऐसे दुस्साहस का काम न करता। आधुनिक मानव भी तो यही कर रहा है।"21 यहाँ जिस प्रकार बुद्धि और हृदय की तुलना करते हुए वाजपेयी जी ने यह व्याख्यान दिया है कि 'इतनी बुद्धि तो श्रद्धा में है ही', उसी प्रकार उन्होंने इड़ा को व्याख्यायित करने की जरूरत नहीं समझी की 'इतना हृदय तो इड़ा में है ही'। क्या वास्तव में यहाँ उनकी दृष्टिकोण समग्रता में कही जाएगी? खैर, उन्होंने कामायनी के काव्य में पात्रों का वर्गीकरण दो पीढ़ियों के चार चरित्र के रूप में किया। "पहली पीढ़ी मनु और श्रद्धा की है जो काव्य के नायक-नायिका है और दूसरी पीढ़ी श्रद्धा-पुत्र और इड़ा की जोड़ी बनकर चलती है। इन दोनों पीढ़ियों में कुछ हद तक खींचतान भी है"22 मनु और श्रद्धा के रिश्ते को वर्त्तमान से जोड़ते हुए यह लिखना तो समझ में आता है "जो मनु और कामायनी हैं, वही आधुनिक पुरुष और नारी भी हैं, यही नहीं शाश्वत पुरुषत्व और नारीत्व भी वही है। एक की साधना से सबकी साधना बन जाती है।"23 परंतु इड़ा को दूसरी पीढ़ी का बना देना थोड़ा अजीब लगता है। आगे उन्होंने जब यह लिखा कि "मनु और इड़ा के संबंध को प्रसाद जी ने मनुपुत्र और इड़ा के संबंध में परिणत कर दिया है। इससे इड़ा का त्याग नहीं ग्रहण ही सिद्ध होता है।"24 यहां वाजपेयी जी का यह वक्तव्य किस संबंध की ओर इंगित कर रहा है? साथ ही इड़ा ने तो कभी मनुपुत्र की लालसा व्यक्त नहीं की बल्कि श्रद्धा ने स्वयं अपने पुत्र का त्याग कर दिया, क्या इसे यह नहीं कहा जा सकता कि वो स्वयं अपनी जिम्मेदारी इड़ा को सौंप कर चली आई ताकि वह पूर्णतः जिम्मेदारी-मुक्त हो मनु के साथ आनंदवाद का रस प्राप्त कर सके? वास्तव में इड़ा और मनुपुत्र का संबंध जनकल्याण से जुड़ा है, शायद श्रद्धा भी यही मानती थीं कि जन-कल्याण लोगों के बीच ही संभव है और इस अर्थ में उनका मानव को इड़ा को सौंपना आदर्शवादिता की एक अलग मिसाल देता है।

वास्तव में आचार्य वाजपेयी ने कामायनी को भीतर-बाहर दोनों ओर से पकड़ने की चेष्टा की। बाहरी पकड़ के लिए शास्त्र तक का सहारा लिया और काव्य की भीतरी पकड़ तो उनकी मूल प्रवृत्ति ही है जिसके परिणाम से वे श्रेष्ठ स्वच्छंदतावादी समीक्षक स्वीकारे जाते हैं। शायद अपनी इसी स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण की वजह से वे कामायनी से अंधश्रद्धा रखने के बावजूद कई जगह पर अपनी ही बातों में उलझे भी नजर आते हैं इसलिए ऐसे जगहों पर उनकी समीक्षा को व्यावहारिक समीक्षा नहीं कहा जा सकता परन्तु ये भी सत्य है कि कामायनी को उसके आरंभ काल से ही सर्वांग में समझने और उसे स्थापित करने में आचार्य जी ने ऐतिहासिक कार्य किया।

कामायनी के इस ऐतिहासिक आलोचनात्मक यात्रा की अगली मुख्य कड़ी मुक्तिबोध से जुड़ी है। कामायनी के पुनर्मूल्यांकन की शुरुआत मुक्तिबोध ने 1945-46 के 'हंस' में कामायनी पर नई दृष्टि डालने से की, जिसका पुस्तकाकार 1961 में 'कामायनी:एक पुनर्विचार' के रूप में हुआ। यहाँ मुक्तिबोध कामायनी को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखते हैं और कुछ आलोचकों ने मुक्तिबोध की इस समीक्षा को 'मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र के आधार पर प्रस्तुत व्यवहारिक समीक्षा' भी कहा है। इतिहास की भौतिकवादी दृष्टि के साथ-साथ मनोविज्ञान को लेकर चलने का प्रयत्न मुक्तिबोध में देखा जा सकता है। सर्वप्रथम मनु तथा श्रद्धा की अंधश्रद्धामय छवि पर जोरदार कुठाराघात मुक्तिबोध ने किया और उन्होंने अपने समाजशास्त्रीय दृष्टि से कामायनी की समीक्षा को एक नया स्वरूप प्रदान किया। हालांकि कामायनी को एक फेंटेसी मानना तथा मनु को प्रसाद के व्यक्तित्व से जोड़कर मुक्तिबोध प्रसाद के प्रति थोड़े निष्ठुर हो गए हैं। परंतु वो एक आलोचक की ज़िम्मेदारी को समझते हुए बड़ी बेबाकी से प्रश्न उठाते हैं -" कामायनी में इड़ा, श्रद्धा और मनु को लेकर प्रसादजी जिन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं, उनका क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। पुरुष, स्त्री, व्यक्ति, समाज, सभ्यता तथा मुक्ति, आदि सभी विषय प्रसादजी की विश्लेषणमयी काव्यानुभूति के भीतर आते हैं - यह बात अलग है कि उनके सामान्यीकरणों से मतभेद रखते हुए, हम उनकी मान्यताओं पर आघात करें जिसका हमें पूरा अधिकार है। उपर्युक्त प्रश्नों को उठाकर प्रसाद जी ने एक महत्वपूर्ण काम किया है। ये प्रश्न चित्रात्मक रुप से उठाए गए हैं। उन्हें मानव-चरित्रात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार का प्रयासमात्र ही कामायनी को मूल्यवान तथा महत्वपूर्ण बना देता है। किंतु समीक्षक का कार्य केवल निंदा नहीं है, न केवल प्रशंसा। वह तो यह देखना चाहेगा कि हमारे वास्तविक जीवन के लक्ष्य की दिशा में कामायनी कहां तक में उपयोगी हो सकती है। क्या कामायनी के सामान्यीकरण तथा निष्कर्ष यथार्थ से संगति रखते हैं?

क्या वे निष्कर्ष अनुभव-सिद्ध, तर्क-शुद्ध, अद्यतन ज्ञान विज्ञान के प्रतिकूल तो नहीं है? कामायनी में प्रश्नों की सच्चाई कहीं उनके उत्तरों की झुठाई में तो पर्यवसित नहीं है? प्रश्नों की वास्तविकता तथा उत्तरों की भ्रामकता की मूल सामाजिक भूमि, जिनसे कि वह नि:सृत हुए हैं, कौन-सी है? सत्य का विश्लेषण जिस भाँति आवश्यक है, उसी तरह असत्य का विवेचन, व्याख्या तथा विश्लेषण भी जरूरी हो जाता है।"25

मुक्तिबोध बड़ी सूक्ष्मता से यह अध्ययन करना चाहते हैं कि कामायनी के तीनों पात्र केवल प्रतीक हैं अथवा मानव चरित्र भी - "श्रद्धा अपने चरित्र द्वारा, इड़ा अपने चरित्र द्वारा तथा मनु अपने चरित्र द्वारा, प्रसाद प्रदत प्रतीकत्व का निर्वाह करते हैं, अथवा किन्हीं अन्य ऐसी वास्तविकताओं के प्रतीक-रूप हैं जिन पर लेखक का कोई वश नहीं था, ऐसी वास्तविकताओं के असंस्कृत प्रतिबिंब हैं जिनकी पूरी वैज्ञानिक विचारानुभूति प्रसाद जी के पास न थी, ऐसी वास्तविकताओं की साहित्यिक रेखाएं हैं जिनकी ऐतिहासिक-सामाजिक अंत:प्रकृति प्रसाद जी की साहित्यिक चेतना के बाहर थी।"26 यहाँ प्रसाद पर दिए उनके विचार उनकी समीक्षा के संतुलन को कुछ स्थानों पर डगमगाती है।

मुक्तिबोध मानते हैं कि 'कामायनी की मूल समस्या मनु समस्या है। मनु प्रेम नहीं कर सकता इसलिए कि उसमें इतनी मनुष्यता नहीं है। दूसरी ओर स्त्री अप्सरा हुई, देवी हुई, श्रद्धा हुई। किंतु उसे साक्षात मानव सहचरी, साधारण मनुष्य, जिसका अपना निजत्व तथा व्यक्तित्व होता है, नहीं समझा गया। मुक्तिबोध श्रद्धा और इड़ा में इड़ा का पक्ष लेते हैं और उसके लिए सशक्त तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में जिस मनु के चरित्र को आदर्शवादी रूप में देखा जा रहा था उसके अपराधिक प्रवृत्ति पर डाले गए पर्दे को उठा कर सत्य का दर्शन कराना आज भी कामायनी के श्रद्धालुओं की आंखों में चुभती है। उनके अनुसार श्रद्धा की सारी आदर्शवादिता 'आत्मबद्ध भावुकता के आदर्शीकरण' का नाम है। "श्रद्धा आत्म-जीवन-प्रधान आदर्शवाद है- ऐसा आदर्शवाद जो रहस्य से संयुक्त होकर, समाजातीत-शिवातीत, अशिवातीत हो जाता है, इसलिए मानवातीत भी हो जाता है । और ऐसी मानवातीत आत्मतंत्रता के आधार पर इड़ा की आलोचना की जाती है।"27 एक एक तरफ वे शुक्ल के लिखे वाक्य में श्रद्धा के लिए यह जोड़ते हैं "रस पगी रही, पायी न बुद्धि, पाया न कर्म" वहीं वो इड़ा के विषय में लिखते हैं कि "इड़ा तो पूंजीवादी समाज की मूल विचारधारा की प्रतीक है। इड़ा का चरित्र बुद्धिप्रधान अवश्य है। वह ज्ञानोन्नति और वर्ग-विभाजन के आधार पर नवीन सभ्यता खड़ी करती है। जीवन के लिए संघर्ष (स्ट्रगल फॉर ऐक्जिस्टेंस) और योग्यतम की विजय तथा शेष का नाश (सर्वाइवल ऑफ दि फिटैस्ट) उसके प्रमुख सिद्धांत हैं..... वह जीवन-संघर्ष में 'योग्यतम की विजय' वाले सिद्धांत को विश्व का चिरंतन मूल नियम मानती है।"28

उनके अनुसार " इड़ा और श्रद्धा के व्यक्तित्व में जो दूसरा मौलिक भेद है, वह इस प्रकार है। इड़ा का व्यक्तित्व कर्म-प्रधान, निर्माण-प्रधान और गत्यात्मक है। इड़ा वैविध्यमय जीवन के उच्चतर विकास और प्रसार में विचरण करती हुई, आधुनिक सभ्यता की विषमताओं पर खेद प्रकट करती है, आत्मालोचन करती है। इड़ा की आत्मालोचना में आत्म-भर्त्सना का विष नहीं है। इड़ा के जीवन में व्यापकता है, गत्यात्मकता है मानव समाज की वर्तमान अवस्था पर खेद और उसके भविष्य के संबंध में उसके हृदय में चिंता है।

किंतु श्रद्धा की व्यक्तित्व-सत्ता भावात्मक, अकर्मक और स्थित्यात्मक है। श्रद्धा मानवी प्रणयिनी और आदर्शमती अनुभूतिप्रवण गृहिणी है। यह स्वाभाविक ही है कि श्रद्धा वन में एकांत वातावरण में एक कुटी बनाकर संतोषपूर्वक दांपत्य-जीवन व्यतीत करने, और इसी प्रकार के जीवन में संपूर्ण विश्व के साथ, विराट ब्रह्मांड के साथ, गहन मैत्रीबोध करने की ओर प्रवृत्त हो। श्रद्धा का वास्तविक जीवन-क्षेत्र संक्षिप्त है। यद्यपि उसकी भावधारा अत्यंत उदात्त है, किंतु जीवन-क्षेत्र की संक्षिप्तता को देखते हुए, और वैविध्यमय जीवन के वास्तविक अभाव को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि श्रद्धा जीवन संघर्ष जगत के संबंध में जो न्याय-निर्णय करती जाती है, वे निर्णय प्रसादजी के काव्य-प्रभाव के कारण भले ही आकर्षक प्रतीत हों उन पर विश्वास करना बिल्कुल गलत है।"29

इसमें संदेह नहीं कि कामायनी के पुनर्मूल्यांकन में मुक्तिबोध काफी गहराई तक गए हैं और उन्होंने इस काव्य के इर्द-गिर्द बनने वाले प्रशंसा-व्यूह को छिन्न-भिन्न करके उसके समाजशास्त्रीय मूल्यांकन की दिशा में एक साहसपूर्ण कदम उठाया। मुक्तिबोध का यथार्थवादी रुख उसकी रहस्यवादी से रुष्ट है और वे इसे पलायनवृत्ति मानते हैं और इसलिए श्रद्धावाद का विरोध करते हैं और इड़ावाद की एक नई दुनिया दिखाते हैं। वहीं कामायनी में प्रसाद जी अनास्था को आधुनिक युग का एक अभिशाप मानते हैं और श्रद्धा अथवा आस्था के द्वारा एक जटिल प्रश्न का उत्तर पाना चाहते हैं, पर यह जरूर है कि उनका यह रुख आदर्शवादी और रूमानी है।

मुक्तिबोध के नक्शे-कदम पर चलते हुए नामवर सिंह जी बतलाते हैं कि 'कामायनी में मनु में जब अधिनायकशाही की भावना उत्पन्न होती है तो इसका प्रारंभ वे इड़ा पर अधिकार जमाने की कोशिश से करते हैं। दूसरे शब्दों में यह बुद्धि पर बलात्कार है।' परंतु साथ ही नामवर सिंह ने मुक्तिबोध की तुलना में मध्यममार्गी रास्ता चुना, जहाँ वो अपनी आलोचना में संतुलन करने की कोशिश करते नज़र आते हैं - "सारस्वत नगर के राजा-प्रजा संग्राम में प्रसाद की यथार्थ दृष्टि ने राजा के विरुद्ध प्रजा की शक्ति तथा उसके विवेक को विजयी दिखाया है। प्रसाद के चित्र हमसे साफ है कि सारा दोष मनु के अहंवाद और एकाधिकार भावना का है, इड़ा का दोष तनिक भी नहीं है। फिर भी श्रद्धा के मुख से प्रसाद ने सारा दोष इड़ा को दिलवाया है। श्रद्धा के लिए यह स्वाभाविक है कि वह अपने पति को दोष देने की जगह अपनी सौत को दोष दे, लेकिन कोई जरूरी नहीं है कि सभी लोग भावुक श्रद्धा की बात का विश्वास कर ले। यहां मनु और श्रद्धा की अपेक्षा इड़ा का चरित्र अधिक ऊंचा दिखाई पड़ता है। दूसरी ओर मनु का अत्यंत लज्जाजनक रूप सामने आता है। एक तो उन्हें अपने किए का कोई पश्चाताप नहीं,

दूसरे वे लौट कर श्रद्धा की शरण लेते हैं और और क्षमा मांगते हैं, यही नहीं, वे इड़ा के पास से कहीं दूर भाग जाना चाहते हैं। यह तमाम बातें पराजित मध्यवर्ग का बुद्धि-विरोध और अंध-श्रद्धा है।

ध्यान देने की बात है कि मनु के घायल होने का सारा दोष पीड़ा को देते हुए भी श्रद्धा ने अपने पुत्र मानव को इड़ा के ही हाथों सौंपने में कल्याण समझा। यह पूर्वग्रह के ऊपर वास्तविकता के विजय का प्रमाण है। पलायनवादी अंध-श्रद्धावादी मनु के विपरीत मानव बुद्धिवादी नई पीढ़ी का प्रतीक है।

इन तमाम बातों से एक बात स्पष्ट है कि यदि वास्तविकता के साथ साहित्यकार का संबंध घनिष्ठ हो तो उसकी इच्छा के बावजूद रचना में वास्तविकता का प्रभावशाली चित्रण हो जाता है। अपनी ओर से प्रसाद ने कैलाश पर मनु की यात्रा तथा श्रद्धावाद की ही स्थापना करनी चाही है, लेकिन मानवता का भविष्य इड़ा और मानव के हाथ दिखाई पड़ता है। अपनी ओर से प्रसाद ने शांत, स्थिर, अहिंसावादी श्रद्धा को श्रेष्ठ बताया है, लेकिन कार्यों से इड़ा अधिक प्रेरणादायी दिखाई देती है। जो कार्य श्रद्धा नहीं कर सकी, उसे इड़ा ने पूरा किया और आगे भी मानव के द्वारा उस कार्य को आगे बढ़ाने का व्रत लिया। इसके विपरीत श्रद्धा ने मनु को भावुक ढंग से आत्मविश्वास तो दिया, लेकिन स्वतंत्र व्यक्तित्व के अभाव में वह मनु के लिए सहायक ना हो सकी और अंत में जब उसने सहायता की भी तो मनु को निष्क्रिय बनाने में।"30

उपरोक्त व्याख्यायित सभी आलोचकों की दृष्टि में कामायनी के स्त्री पात्र की समीक्षा करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि समय के साथ पात्रों को देखने का नजरिया बदलता चला गया है। जो कामायनी कभी श्रद्धावाद की ओर झुकाव रखती थी वही आज इड़ामय हो गयी है। वास्तव में श्रद्धा और इड़ा दोनों को देखने के दो नज़रिये हैं - एक प्रतीक के रूप में तो दूसरा मानव चरित्र के रूप में। अलग-अलग आलोचकों ने अलग-अलग नज़रिये से दोनों स्त्री पात्रों को परखने की कोशिश की है पर ये गौरतलब है कि हर रचना का अपना एक भाग्य, अपना एक दायरा होता है जिसे कभी चाह कर भी कवि पूर्णत: अपने वश में नहीं कर सकता। शायद इसलिए ही प्रसाद जी का श्रद्धा और मनु के ऊपर पूर्ण सहानुभूति तथा ममत्व रखने की पुरजोर कोशिश के बावजूद भी वे आलोचकों का ध्यान मनु के कुकर्मों, श्रद्धा के खोखले विचारों तथा इड़ा के सत्कर्मों पर से नहीं हटा सके। वास्तव में इस रचना को देखने के अलग-अलग इतने दृष्टिकोण हैं कि किसी एक आलोचक को पूर्णतः सही या गलत नहीं ठहराया जा सकता है। परंतु अगर कामायनी को सिर्फ एक स्त्रीवादी दृष्टिकोण से पढ़ा जाए तो मुक्तिबोध और नामवर सिंह जी की आलोचना के द्वारा एक न्यायोचित दृष्टि जरूर मिलती है। यहाँ यह बात जरुर ध्यान में रखनी चाहिए कि मुक्तिबोध मनु के प्रति कठोर होते-होते, कामायनी और जयशंकर प्रसाद को भी घेरे में ले लिए हैं। वैसे कामायनी के स्त्री पात्र में ऐसी बहुत सारी अद्भुत विशिष्टता है जो वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में भी एक अहम् भूमिका निभाती है।

कामायनी एक ऐसी युग की सृष्टि है जो नाना प्रकार की आध्यात्मिक या बौद्धिक द्वंद्व से आक्रांत है जिसमें अनेक प्रकार की विचार क्रांतियाँ एक दूसरे का खंडन करती हुई जीवनावस्था को खंडित कर रही है। कामायनी द्वारा प्रसाद ने एक ऐसे जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा की जो एक साथ ही समकालीन और सर्वकालीन समस्याओं का समाधान कर सके। एक ऐसे सौंदर्य बोध की प्रतिष्ठा की गई जो जीवन के प्रांगण में फल फूल सके। एक ऐसे नैतिक बोध की स्थापना की है जिसे अपनाकर हम विकास की दौड़ में सधे हुए आगे निकल सकें - इस संदर्भ में उन्होंने असाधारण सृजनात्मक क्षमता के अविघटित जागरूक स्रोत से भारतीय संस्कृति का स्वरूप दर्शित किया है।

आधार ग्रन्थ

1) पृष्ठ संख्या 11, नामवर सिंह, कामायनी (मूल्यांकन और मूल्यांकन), इन्द्रनाथ मदान, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989, प्रथम संस्करण

2) पृष्ठ संख्या 11, रामस्वरूप चतुर्वेदी, कामायनी (मूल्यांकन और मूल्यांकन), सं० इन्द्रनाथ मदान, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989, प्रथम संस्करण

3) पृष्ठ संख्या 216, डॉ0 प्रेमशंकर, प्रसाद का काव्य

4) पृष्ठ संख्या 57, डॉ0 नगेंद्र, अनुसंधान और आलोचना

5) पृष्ठ संख्या viii, जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2015

6) पृष्ठ संख्या 133, नामवर सिंह, कामायनी (मूल्यांकन और मूल्यांकन), इन्द्रनाथ मदान, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989, प्रथम संस्करण

7) वही

8) पृष्ठ संख्या v, जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2015

9) पृष्ठ संख्या viii, जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2015

10) पृष्ठ संख्या 34, जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2015

11) पृष्ठ संख्या 685, रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत 2006

12) पृष्ठ संख्या 691, रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत 2006

13) जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2015

14) पृष्ठ संख्या 692, रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत 2006

15) जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2015

16) पृष्ठ संख्या 692, रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत 2006

17) पृष्ठ संख्या 693, रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत 2006

18) पृष्ठ संख्या 61, नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

19) पृष्ठ संख्या 62, नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

20) पृष्ठ संख्या 22, नंददुलारे वाजपेयी, कामायनी (मूल्यांकन और मूल्यांकन), सं० इन्द्रनाथ मदान, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989, प्रथम संस्करण

21)पृष्ठ संख्या 83, नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

22) पृष्ठ संख्या 18, नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

23) पृष्ठ संख्या 83, नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

24) पृष्ठ संख्या 20, नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

25) पृष्ठ संख्या 20, गजानन माधव मुक्तिबोध, कामायनी: एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

26) पृष्ठ संख्या 22, गजानन माधव मुक्तिबोध, कामायनी: एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

27) पृष्ठ संख्या 133, गजानन माधव मुक्तिबोध, कामायनी: एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

28) पृष्ठ संख्या 121, गजानन माधव मुक्तिबोध, कामायनी: एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

29) पृष्ठ संख्या 133, गजानन माधव मुक्तिबोध, कामायनी: एक पुनर्विचार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

30) पृष्ठ संख्या 139, 14, नामवर सिंह, कामायनी (मूल्यांकन और मूल्यांकन), इन्द्रनाथ मदान, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989, प्रथम संस्करण